प्रवचन-३३, गाथा-३८, शुक्रवार, अषाढ़ कृष्ण १३, दिनांक ०८-०८-१९८०

यह नियमसार। कुन्दकुन्दचार्य कहते हैं कि मैंने मेरी भावना के लिये बनाया है। दूसरे ग्रन्थ में ऐस शब्द कहीं आया नहीं। कुन्दकुन्दाचार्य! मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमोगणी.. तीसरे नम्बर में मंगलं कुन्दकुन्दार्यो आता है। वे कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि मैंने मेरी भावना के लिये यह निमयसार बनाया है। यह 'शुद्धभाव अधिकार' है। यह

१. शिखामणि=शिखर के ऊपर का रत्न; चूड़ामणि; कलगी का रत्न।

२. भावान्तर=अन्य भाव। (औदयिक, औपशमिक, क्षायोपशमिक और क्षायिक — ये चार भाव परमपारिणामिकभाव से अन्य होने के कारण, उन्हें भावान्तर कहा है। परमपारिणामिकभाव जिसका स्वभाव है — ऐसा कारणपरमात्मा इन चार भावान्तरों को अगोचर है।)

शुद्धभाव, पर्याय की बात नहीं है। ऊपर शुद्धभाव नाम है न ? उस शुद्धभाव-शुद्धोपयोग की यहाँ बात नहीं है। अशुभराग और शुभराग दोनों अशुद्ध हैं और रागरहित चिदानन्द भगवान आत्मा का उपयोग शुद्ध है। उसकी बात यहाँ नहीं है। वह शुद्ध पर्याय की बात है। यह शुद्धभाव द्रव्य की बात है। आहाहा!

वस्तु है वस्तु, भाववान। वह शुद्धभावस्वरूप है। त्रिकाल ध्रुव। भाववान आत्मा का भाव शुद्धभाव, वह त्रिकाल स्वभाव है। आहाहा! भाववान ध्रुवपना अथवा आत्मापना जो त्रिकाली ज्ञायकभाव, त्रिकाली परमपारिणामिक, जिसमें किसी कर्म के अभाव अथवा निमित्त की अपेक्षा नहीं, ऐसा परम त्रिकाली स्वभाव को यहाँ शुद्धभाव कहते हैं।

शुद्धभाव अधिकार कहा जाता है। शुद्धभाव का अर्थ इतना—द्रव्य त्रिकाली भगवान आत्मा पूर्णानन्द से भरपूर है और जिसमें गुण-गुणी का भेद भी नहीं। शुद्धभाव और आत्मा शुद्धभाव का धारक—ऐसा भेद भी जिसमें नहीं। शुद्धभाव, पवित्र त्रिकाल भाव, आहाहा! पुण्य और पाप आदि भावों को तो शास्त्र में चपलभाव कहा है। चपल, चपलाई है, आकुलता है। उनसे रहित जो भाव है, वह शुद्धोपयोग है, वह तो पर्याय है, परन्तु शुद्धोपयोग की पर्याय किसके आश्रय से उत्पन्न होती है - उसका अधिकार है। समझ में आया ? शुद्धभाव का अर्थ पहले किया। कभी सुना नहीं। क्या शुद्धभाव! जय भगवान, भक्ति करना, पूजा करना। सेठ! यह तो सेठ है। वहाँ प्रमुख है। नरम व्यक्ति है। यह सुनने का प्रेम है। यह चीज़ कुछ दूसरी है। प्रभु! क्या कहें ? वर्तमान में प्रचलित बात से (यह) कोई दूसरी ही बात है। आहाहा!

शुद्धभाव, गाथा

जीवादिबहित्तच्चं हेयमुवादेयमप्पणो अप्पा।
कम्मोपाधिसमुब्भवगुणपज्जाएहिं वदिरित्तो ।।३८।।

नीचे (हरिगीत)

हैं हेय सब बहितत्त्व ये जीवादि, आत्मा ग्राह्य है।
अरु कर्म से उत्पन्न गुणपर्याय से वह बाह्य है ॥३८॥

टीका - यह हेय और उपादेयतत्त्व के स्वरूप का कथन है। धर्मी को-सम्यग्दृष्टि को छोड़ने योग्य क्या है ? और आदरनेयोग्य क्या है ? - उसका कथन है। धर्म की पहली

सीढ़ी, धर्म का पहला सोपान सम्यग्दर्शन है, तो सम्यग्दर्शन में उपादेय क्या है और हेय क्या है ? सम्यग्दर्शन, पर्याय है.. आहाहा! परन्तु उसमें पर्याय की सन्मुखता किस चीज़ पर जाती है और वह उपादेय कैसा है तथा उसके अतिरिक्त बहिरतत्त्व हेय कैसा है ? ऐसा हेय और उपादेय तत्त्व के स्वरूप का कथन है। ऐसा साधारण शब्द लिया है। अब इसका अर्थ भी थोड़े दूसरे प्रकार से करते हैं।

जीवादि सात तत्त्वों का समूह परद्रव्य होने के कारण... वास्तव में हेय है – ऐसा नहीं कहा। पाठ में हेय है। परन्तु हेय न कहकर उपादेय नहीं है (–ऐसा कहा)। समझ में आया ? क्या उपादेय नहीं। '**जीवादिबहित्तच्चं**' जीव की वर्तमान पर्याय और संवर, निर्जरा और मोक्ष; पुण्य-पाप, आस्रव और बन्ध – ये सब बहिरतत्त्व हैं। पर्याय जो है, धर्म की पर्याय-संवर-निर्जरा की पर्याय – भी बहिरतत्त्व है, क्योंकि अन्तःतत्त्व में वह चीज़ / पर्याय नहीं है। सूक्ष्म बात है। अरे रे! जिन्दगी मिली है तो सुनना-समझना तो पड़ेगा न, भाई! जिन्दगी चली जाएगी। कहाँ अवतार होगा ? आहाहा! यदि अन्तर में यह वस्तु समझने में नहीं आयी, तो इसके जन्म का कहीं पता नहीं लगेगा। आहाहा!

यहाँ परमात्मा कहते थे, वह कुन्दकुन्दाचार्य ने स्वयं की भावना के लिये बनाया है। '**जीवादिबहित्तच्चं**' **जीवादि सात तत्त्वों...** यहाँ पुण्य-पाप को भिन्न नहीं लिया। शुभ-अशुभभाव को आस्रव में मिला (दिया है)। जीव की वर्तमान पर्याय और पुण्य-पाप, वह आस्रव, दो.. और संवर-निर्जरा, बन्ध तथा मोक्ष – ये सात तत्त्व हुए। इन सात तत्त्वों का समूह परद्रव्य है। आहाहा! केवलज्ञान की पर्याय, स्वद्रव्य जो भगवान शुद्धभाव त्रिकाल परमात्मस्वरूप, अपना पूर्ण भगवत्स्वरूप 'घट घट अन्तर जिन बसे, घट घट अन्तर जैन; मत मदिरा के पान सो मतवाला समझे न।' अपने अभिप्राय की मदिरा पिये हुए, यह सात तत्त्व क्या है, वह समझते नहीं। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि इन सात तत्त्वों में संवर, निर्जरा और मोक्ष भी आये। जो मोक्षमार्गप्रकाशक में टोडरमलजी ने संवर को उपादेय कहा है, निर्जरा को हित का कारण कहते हैं, मोक्ष परम हित है – ऐसा कहा है। वह तो ज्ञान की प्रधानता से कथन किया है। यहाँ दृष्टि प्रधान कथन में... आहाहा! सम्यग्दर्शन जो अनन्त काल में एक समयमात्र भी चीज़ क्या है, इसने यथार्थ रुचि से सुनी नहीं। '**तत्प्रति प्रीतिचित्तेन येन वार्तापि हि श्रुता**' आहाहा! गाथा आती है न ? पद्मनन्दि पंचविंशति की है। भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ,

जिसमें संवर, निर्जरा और मोक्ष, वह भी पर्याय है तो पर्याय, वह व्यवहारनय का विषय है; अतः व्यवहार के विषय को यहाँ परद्रव्य कहा है।

परद्रव्य क्यों कहा ? कि जैसे अपने अतिरिक्त परद्रव्य में से धर्म की नयी पर्याय उत्पन्न नहीं होती; वैसे संवर-निर्जरा की पर्याय में से धर्म की शुद्धि की नयी पर्याय उत्पन्न नहीं होती। सूक्ष्म है, भाई ! धर्म की पर्याय की शुद्धि की वृद्धि, वह पर्याय में से नहीं आती। पर्याय के आश्रय से नहीं आती, पर्याय के लक्ष्य से नहीं आती। उस पर्याय के अतिरिक्त त्रिकाली भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ प्रभु अनन्त गुण का सागर है (उसके आश्रय से शुद्धि की पर्याय प्रगट होती है)। आहाहा !

यहाँ तो अभी दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम हेय हैं, यह स्वीकार करने में पानी उतर जाता है। पण्डितजी ! दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, भगवान का विनय आदि ये सब भाव हेय हैं, राग है। अभी यह राग हेय है, यह समझने में कठिन पड़ता है। आहाहा ! यहाँ तो परमात्मा सौ इन्द्रों के बीच में, सौधर्म स्वर्ग का इन्द्र एकावतारी, एक भवतारी है। शकेन्द्र इन्द्र है। सौधर्म देवलोक में बत्तीस लाख विमान हैं। एक-एक विमान में बहुतों में तो असंख्य अरब देव हैं। बत्तीस लाख विमान, एक-एक विमान में असंख्य-असंख्य देव हैं। संख्यात देव वाले थोड़े हैं। संख्यात देव वाले हैं, परन्तु वे थोड़े हैं। असंख्य देव वाले बहुत हैं, ऐसे बत्तीस लाख विमान का स्वामी, करोड़ों अप्सरायें हैं। आहाहा ! शकेन्द्र है। सिद्धान्त में लेख है कि वह एक भवतारी है। वहाँ से मनुष्य होकर मोक्ष में जानेवाला है और उसकी एक पटरानी, रानी, देवी है, वह देवी उत्पन्न होती है, तब तो मिथ्यात्व (होता है)। स्त्री का उत्पन्न होना मिथ्यात्व से ही उत्पन्न होता है। जहाँ-जहाँ स्त्री उत्पन्न हुई, वह मिथ्यात्व है; इसलिए स्त्रीरूप से उत्पन्न होती है। वह देवी उत्पन्न हुई, तब तो मिथ्यात्व था परन्तु पश्चात् उसके स्वामी इन्द्र, उसके साथ भगवान का जन्मकल्याणक, गर्भकल्याणक, केवलज्ञान कल्याणक, दीक्षाकल्याणक में साथ जाते थे। इसमें सुनने में आया और सुनकर देवी अन्दर में उतर गयी। करोड़ों देवियों में उनकी मुख्य अधिपति। आहाहा ! वह यह जो पर्याय कहते हैं, उसकी दृष्टि छोड़कर द्रव्यदृष्टि में उतर गयी। अन्तः-अन्तः... आहाहा !

लोग कहते हैं न कि पाताल में बहुत पानी है। पाताल, पाताल में बहुत पानी नहीं, क्योंकि पाताल के पानी में नीचे नरक के पासड़ा आते हैं, चाहे जितने गहरे सागर-समुद्र हो परन्तु नीचे एक हजार योजन का पहले नरक का ऊपर का पासड़ा है। इसलिए पाताल

में पानी अधिक नहीं है अथवा चौदह ब्रह्माण्ड में पानी का क्षेत्र थोड़ा है और जमीन का क्षेत्र अधिक है। समझ में आया? यह तो एक बार अन्दर बहुत विचार आते-आते लगा कि पूरे ब्रह्माण्ड का तौल क्या होगा? पूरे ब्रह्माण्ड के ३४३ राजू का तौल क्या होगा? तौल वह तो भगवान जाने। बाकी उसका तौल अर्थात् ज्ञान के प्रमाण में उसका माप आ जाता है। समझ में आया? मुझे तो दूसरा कहना है। इस पाताल की तो मर्यादा है और यह भगवान है, इसकी पर्याय के पीछे पाताल भरा हुआ है। सूक्ष्म बात है, प्रभु! आहाहा!

तेरी प्रभुता का पार नहीं, प्रभु! ऐसी बात है परन्तु इन बाहर की चीज़ों के प्रपंच में बाहर के प्रपंच में सुखबुद्धि से तेरी स्वयं की सुखबुद्धि उत्पन्न नहीं होती। बाह्य यह प्रपंच शरीर, वाणी, प्रदर्शन, पैसा, इज्जत, मकान, ये सब बाह्य प्रपंच और सुखबुद्धि के कारण भगवान अन्दर शुद्ध अतीन्द्रिय आनन्द सम्पन्न है, उसकी सुखबुद्धि नहीं होती। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो दूसरा कहना है कि इस पाताल के पानी की तो मर्यादा है। इस पाताल (के ऊपर) यह पर्याय है, उसे यहाँ परद्रव्य कहा है। उस परद्रव्य के पीछे पूरा पाताल है। यह शुद्धभाव। ये सात तत्त्व हैं, वह शुद्धभाव नहीं है। संवर-निर्जरा, मोक्ष भी शुद्धभाव नहीं है। वह पर्याय का शुद्धभाव है। उस शुद्धभाव की पर्याय को तो यहाँ परद्रव्य कहा है। आहाहा! कठिन बात है, भगवान! अरे! तुझे कहाँ रहना? कहाँ जाना?

अनादि-अनन्त भगवान आत्मा, तो कहते हैं कि प्रभु तेरी चीज़ तो ऐसी है कि जिसमें संवर, निर्जरा और मोक्ष को भी हम तो परद्रव्य कहते हैं, क्योंकि उनके आश्रय से सम्यग्दर्शन होता नहीं.. उत्पन्न हुआ सम्यग्दर्शन, परन्तु सम्यग्दर्शन की पर्याय के आश्रय से केवलज्ञान की पर्याय उत्पन्न नहीं होती। आहाहा! संवर की पर्याय शुद्धि है और निर्जरा की पर्याय, शुद्धि की वृद्धि है और मोक्ष की पर्याय, शुद्धि की पूर्णता है, परन्तु ये तीनों पर्याय, पर्याय से उत्पन्न नहीं होती। आहाहा! सेठ! यह कभी सुना ही नहीं। बहुत कठिन (बात), भगवान! आहाहा! बाहर की प्रवृत्ति में ऐसा किया.. ऐसा किया.. गजरथ निकाला, रथयात्रा निकाली, भगवान की हजारों प्रतिमा स्थापित की तो मानो हो गया धर्म। शुभभाव होता है। जब तक वीतरागता न हो, तब तक समकिती को भी अशुभ से बचने शुभभाव होता है परन्तु वह बन्ध का कारण है।

यहाँ तो उससे भी आगे जाकर.. आहाहा! प्रभु! द्रव्य और पर्याय दो वस्तु है। द्रव्य अर्थात् त्रिकाली वस्तु अर्थात् यह शुद्धभाव और पर्याय; दो चीज़ में पर्याय को व्यवहारनय

कहा और त्रिकाल को निश्चय कहा। पर्याय को व्यवहार कहकर परद्रव्य कहा, तो कहते हैं, टीकाकार ने परद्रव्य कहाँ से निकाला? पाठ में तो ऐसा नहीं है। '**जीवादिबहित्तच्चं**' इतना है, तो ५०वीं गाथा में कुन्दकुन्दाचार्य ने परद्रव्य कहा है। ५०वीं गाथा! यह टीकाकार भी अपनी शैली करते हैं। '**परदव्वं परसहावमिदि हेयं।**' ऐसे तीन बोल हैं। ५० गाथा देखो! पर्याय है वह परद्रव्य है, परभाव है और हेय है। तीन बोल है। समझ में आया? आहाहा! संसार के कारण इसे निवृत्ति नहीं मिलती। उसमें पैसा कुछ करोड़-दो करोड़-पाँच करोड़ होवे तो, आहाहा! उसमें फँस गया। प्रभु! उसकी संख्या से अनन्तगुने तुझमें धर्म, गुण हैं। जिसे यहाँ शुद्धभाव कहते हैं, वह द्रव्यस्वभाव, उसके गुण की संख्या का पार नहीं है - अन्त नहीं है कि यह अन्तिम अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. तो यह अनन्त, अनन्त के अनन्त का यह अन्तिम गुण है, ऐसी बात आत्मा में है ही नहीं। समझ में आया? क्या कहा?

आत्मा में गुण की इतनी संख्या है। पर्याय से भिन्न द्रव्य अन्दर है। पर्याय अन्तर्मुख देखती है तो पाताल उसके हाथ में आता है, परन्तु वह पाताल पूरा पाताल होता नहीं, तथापि पता लग जाता है। क्या कहा? आहाहा! संवर-निर्जरा की, मोक्षमार्ग की अपनी पर्याय जो है, उस मोक्षमार्ग की पर्याय को भी यहाँ परद्रव्य कहा है। आहाहा! क्योंकि वह पर्याय है। वह पर्याय है, उसकी अवधि एक समय की है और भगवान अन्दर त्रिकाली आनन्द का कन्द है।

सिद्धान्त में तो ऐसा एक शब्द आया है कि निरन्तर वर्तमान। आहाहा! त्रिकाली वस्तु निरन्तर वर्तमान। भविष्य में रहेगी, ऐसा नहीं; यहाँ तो निरन्तर वर्तमान है। बाद में विशेष कथन करें तो त्रिकाली भी कहने में आता है। आहाहा! इस देह में भगवान आत्मा निरन्तर वर्तमान, निरन्तर ध्रुव, निरन्तर वर्तमान ध्रुव है। यह शुद्धभाव। यह वर्तमान में शुद्धभाव है। त्रिकाल रहता है, इसलिए शुद्धभाव है-ऐसा नहीं, परन्तु यहाँ तो वर्तमान ही शुद्धभाव है, वर्तमान में ही ध्रुव है। आहाहा! सूक्ष्म बात है।

यहाँ कहते हैं कि **जीवादि सात तत्त्वों का समूह...** इनके घर का नहीं कहा। ५०वीं गाथा में और समयसार में भी आता है। समयसार में कलश में आता है '**परद्रव्यम् समग्रं हेयम्**' यह सब पर्यायादि परद्रव्य है। आहाहा! एक ओर राम तथा एक ओर गाँव। एक समय की पर्याय को राम कहें तो प्रभु त्रिकाली को पूरा गाँव कहें। पूर्णानन्द का नाथ,

जिसके गुण की संख्या का पार नहीं। आहाहा! यहाँ तो अरब-दो अरब कमाया.. यह तो अभी अरब तक कहते हैं। हमारे समय में तो अरब के बाद भी लेते थे - खरब, निखरब, महापद्म ऐसी संख्या थी। जैसे सौ करोड़ का अरब, वैसे सौ अरब का खरब, सौ खरब का निखरब.. ऐसे अठारह बोल थे। हमारे समय में। अभी तो अरब तक है। यह तो सत्तर वर्ष, अस्सी वर्ष पहले की बात है। ९-१० वर्ष की उम्र में पढ़े थे। अभी तो ९० हुए। आहाहा! तो उस संख्या की भी मर्यादा है। समझ में आया? अरब के पश्चात् खरब, निखरब आदि अठारह हैं तो भी उनकी मर्यादा-हद है। आत्मा के गुण की जो संख्या है, उसकी तो मर्यादा की हद ही नहीं। आहा! इतनी संख्या का पूर, चैतन्य के नूर के तेज का पूर, इस अतीन्द्रिय आनन्द के सागर के जल से भरा पड़ा है, प्रभु! आहाहा! इस शुद्धभाव की अपेक्षा से संवर-निर्जरा-मोक्ष को भी परद्रव्य कहा गया है। आहाहा!

अरे रे! सत्य बात कान में पड़े नहीं, वह सत्य बात कब समझे, अरे! मनुष्यपना चला जाता है, भाई! समय-समय, मिनट, दिन जाते हैं। यह जो मृत्यु का समय है, वह तो निश्चित है। जितने दिन जाते हैं, वे मृत्यु के समीप जाते हैं। समझ में आया? देह को छूटने का निश्चित समय है। उसमें कुछ आगे-पीछे नहीं होता, तो इस समय में जितने दिन जाते हैं, वे देह छूटने के समीप में जाते हैं। आहाहा! उसमें यदि आत्मा पर से भिन्न है, ऐसा सम्यग्दर्शन नहीं किया.. आहाहा! तो प्रभु! तेरे भव का अन्त कहाँ से आयेगा और पहले तो अभी श्रद्धा का ठिकाना नहीं। दया, दान, व्रत, भक्ति करते-करते कल्याण हो जायेगा (ऐसी मान्यता), वह तो मिथ्यात्व है।

यहाँ तो पर्याय के आश्रय से कल्याण होगा - ऐसा भी नहीं है। संवर-निर्जरा पर्याय है तो कल्याणरूप। कल्याणरूप। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्षमार्ग, वह है तो तीनों कल्याणरूप और श्रावक को तो ये तीनों कहे हैं। सम्यग्दृष्टि श्रावक है, उसे भी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों कहे हैं। इस नियमसार में भक्ति अधिकार में दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों कहे हैं परन्तु उसके पहले दर्शनशुद्धि, प्रतिमा के ग्यारह बोल हैं न? उसमें दर्शनशुद्धि पहला बोल है। तो वह दर्शनशुद्धि, यह चौथे गुणस्थान की बात नहीं है। पाँचवें गुणस्थान की बात है। दर्शनशुद्धि, व्रत ऐसी ग्यारह प्रतिमा है न? तो वह दर्शनशुद्धि चौथे गुणस्थान की बात नहीं है। ग्यारह प्रतिमा में पहली प्रतिमा है। है तो पंचम गुणस्थान की बात परन्तु व्रत निरतिचार नहीं; इस कारण व्रत प्रतिमा नहीं कहा। मुझे तो दूसरा कहना है, इस दर्शन

प्रतिमावाले को भी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों कहे हैं। आहाहा! पीछे अधिकार है न? भक्ति का अधिकार है। भक्ति-भक्ति, यह लो! भक्ति अधिकार आया, हों! भक्ति। यह तो हिन्दी है न? हमारे गुजराती में सब लिखा है। देखो! पहली गाथा १३४ में है। हिन्दी प्रति में २६९ पृष्ठ है। देखो!

रत्नत्रय की भक्ति करते हैं। उन परम श्रावकों तथा परम तपोधनों को जिनवरों की कही हुई निर्वाणभक्ति... उसमें चारित्र लिया है। समझ में आया? शुद्ध रत्नत्रय की भक्ति करते हैं। उसमें है? शुद्ध रत्नत्रय, पंचम गुणस्थानवाले को रत्नत्रय कहा। पहली गाथा १३४, टीका है। बाद में चारित्र कहा है परन्तु वह यहाँ नहीं लिया। आहाहा! वह चारित्र पाँचवें गुणस्थान में भी कहा है – मुझे ऐसा कहना है। समझ में आया? क्या कहा?

कोई ऐसा कहता है कि श्रावक को चारित्र नहीं होता। श्रावक को मात्र दर्शन और ज्ञान होते हैं। सम्यग्दृष्टि श्रावक है और पंचम गुणस्थान में है, उसे यहाँ... पाठ देखो पाठ। मूल पाठ **कुणइ सावगो समणो** गाथा है? **सम्मत्तणाणचरणे जो भत्तिं कुणइ सावगो समणो। तस्स दु णिव्वुदिभत्ती..** श्रावक भी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीन की भक्ति अर्थात् परिणमन करता है। भक्ति अर्थात् विकल्प नहीं। आहाहा! समझ में आया? १३४वीं गाथा है। '**कुणइ सावगो समणो**' '**सम्मत्तणाणचरणे जो भत्तिं कुणइ सावगो समणो**' श्रावक को भी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की परिणति है, वह भक्ति है। सिद्ध की भक्ति करना, वह तो व्यवहार में गया। वह दूसरी गाथा में है क्योंकि वह तो विकल्प है। आहाहा! यहाँ तो पंचम गुणस्थान में भी दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों कहे गये हैं। यहाँ तो कहते हैं कि नहीं, नहीं; पंचम गुणस्थानवाले को शुद्धोपयोग नहीं होता। शुद्धोपयोग तो मुनि को ही होता है (ऐसा आजकल कुछ लोग कहते हैं)। पाठ में ऐसा है, परन्तु वह तो मुनि का शुद्धोपयोग है, वह दशा जैसा शुद्धोपयोग श्रावक को नहीं होता (ऐसा कहना है)। समझ में आया? शुद्धोपयोग नहीं होता है, ऐसा नहीं है क्योंकि सम्यग्दर्शन होता है, वह शुद्धोपयोग की भूमिका में ही होता है। आहाहा! समझ में आया?

द्रव्यसंग्रह की ४७ गाथा है। ४७ – '**दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा।**' ऐसा पाठ है। निश्चयमोक्षमार्ग और व्यवहारमोक्षमार्ग '**दुविहं पि मोक्खहेउं**' दो प्रकार के मोक्ष का हेतु '**झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा।**' ध्यान में प्राप्त होता है। ऐसी किसी विकल्प की दशा में और ऐसे और वैसे मोक्षमार्ग नहीं होता। आहाहा! अन्तर में

स्वरूप शुद्ध चैतन्य है, उसका ध्यान लगा दिया, ध्येय बनाकर ध्यान लगाया, उस ध्यान में निश्चयसम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्राप्त होते हैं और साथ में जरा राग रहता है, उसे व्यवहारमोक्षमार्ग का आरोप देकर व्यवहार कहा है। है तो राग। '**दुविहं पि**' है न? '**दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा।**' ४७वीं गाथा है। ४७ अर्थात् क्या? ४ और ७। हिन्दी भाषा सब नहीं आती है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि श्रावक को भी जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है, वह बहिर्तत्त्व है। आहाहा! इसने तो सुना भी नहीं होगा कि यह चीज़ क्या है? वह यहाँ कहते हैं। सुन तो सही, प्रभु! तेरे अन्दर इतनी बड़ी चीज़ पड़ी है कि उसकी महिमा के आगे दुनिया में कोई दूसरी महिमा नहीं है। सिद्ध की पर्याय की भी उसके समक्ष महिमा नहीं है, महिमा नहीं है। ऐसा भगवान आत्मा, वर्तमान, वर्तमान ध्रुव नित्यानन्द प्रभु! अनन्त गुण के समुदाय का एक पिण्ड, प्रभु! उसे यहाँ द्रव्य अथवा शुद्धभाव कहते हैं। उस द्रव्य की अपेक्षा से संवर, निर्जरा और मोक्ष का मार्ग भी परद्रव्य कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया?

विशिष्टता क्या है? कि पाठ में तो संक्षिप्त शब्द हैं, इसलिए हेय-उपादेय कहा कि सात तत्त्व हैं, वे हेय हैं। संवर, निर्जरा और मोक्ष भी हेय है। समझ में आया? **जीवादि सात तत्त्वों का समूह...** आया न? **परद्रव्य होने के कारण...** पाठ में हेय कहा। टीकाकार ऐसा कहते हैं कि **वास्तव में उपादेय नहीं है।** ऐसा लिया है। पाठ में हेय है, ऐसा न लेकर, सात तत्त्व उपदेय नहीं (-ऐसा कहा है)। समझ में आया? मार्ग, बापू! परमात्मा जिनेश्वरदेव का मार्ग कोई अलौकिक है। लोक तो ये बाहर में व्रत लिये, तप किया, जंगल में रहना, नग्न रहना, ऐसी क्रिया, ऐसे परिग्रह सहन करना, वह सब धर्म है। वह धर्म-वर्म नहीं है। आहाहा! लोकरंजन को धर्म बताकर लोगों का रंजन हो जाता है। यह तो कठिन बात है।

यहाँ तो **जीवादि सात तत्त्वों...** अर्थात् जीव की एक समय की पर्याय, अजीव का ज्ञान। अजीव का ज्ञान। अजीव तो पर है। आस्रव-पुण्य-पाप; बन्ध-राग में रुक जाना; संवर-शुद्धि की उत्पत्ति; निर्जरा-शुद्धि की वृद्धि; मोक्ष - शुद्धि की पूर्णता। ये सात तत्त्व हैं। ये **सात तत्त्वों का समूह परद्रव्य होने के कारण...** आहाहा! आत्मा के अतिरिक्त दूसरे अनन्त परद्रव्य हैं, वे तो हेय हैं।

त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव अष्टपाहुड़-मोक्षपाहुड़ की १६ वीं गाथा में ऐसा फरमाते हैं कि '**परदव्वाओ दुग्गइ**' प्रभु ऐसा कहते हैं कि हमारी ओर तेरा लक्ष्य होगा तो तुझे राग

होगा, वह तेरी दुर्गति है; वह चैतन्य की गति नहीं। आहाहा! समझ में आया? अष्टपाहुड़ में, मोक्षपाहुड़ की १६ वीं गाथा '**परदव्वाओ दुग्गइ**' तीर्थंकर कहते हैं कि हम तो तेरे द्रव्य से परद्रव्य हैं, तो परद्रव्य दुर्गति है। हमारी ओर तेरा लक्ष्य जायेगा तो तुझे राग ही उत्पन्न होगा। राग, वह चैतन्य की गति नहीं, वह तो दुर्गति है। अर र! आहाहा! 'णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं...' करे, वह तो राग है।

यहाँ तो संवर और निर्जरा जो रागरहित दशा है, वह आत्मद्रव्य के आश्रय से उत्पन्न हुई है। संवर-निर्जरा और मोक्ष, ये तीन और चार को साथ मिलाकर—जीव, अजीव, आस्रव, और बन्ध - इन चार को साथ मिलाकर तथा संवर, निर्जरा और मोक्ष तीन अर्थात् सात, इन सातों को मिलाकर परद्रव्य कहा है। समझ में आया? है न अन्दर। आहाहा! यहाँ तो अभी लोग यह दया करे, व्रत करे, अपवास करे, महीने-महीने, पन्द्रह-पन्द्रह दिन के बिना पानी के उपवास करे तब, ओहोहो! बहुत तपस्या की। अरे! धूल भी नहीं, लंघन है। तप तो उसे कहते हैं कि जिसे अपनी शुद्ध चैतन्य की दृष्टि का-स्वद्रव्य का अनुभव हुआ, परद्रव्य को हेय जानकर, फिर स्वद्रव्य में लीनता होना, वह चारित्र है और चारित्र में उग्र पुरुषार्थ से विशेष उग्रता होना, वह तप है। आहाहा! व्याख्या भी अलग!

वह भी यहाँ तो कहते हैं कि भाव तप है। आहाहा! शुद्धि की वृद्धि होती है, वह भी परद्रव्य है। आहाहा! **परद्रव्य होने के कारण...** वापस कारण दिया। वह उपादेय क्यों नहीं? आदरणीय क्यों नहीं? कि वह परद्रव्य है, इसलिए उपादेय (नहीं है)। **वास्तव में उपादेय नहीं है।** खरेखर वह, वास्तव में अर्थात् खरेखर। समझ में आया? आहा! '**जीवादिसप्ततत्त्व-जातं परद्रव्यत्वान्न ह्युपादेयम्**' आहाहा! वास्तव में उपादेय नहीं है ऐसा आया न? '**परद्रव्यत्वान्न ह्युपादेयम्**' आहाहा! अभी तो पुण्य के परिणाम करने में से निवृत्ति नहीं मिलती। आहाहा! संसार के पाप, पूरे दिन धन्धा-पानी, स्त्री-पुत्र, पूरे दिन पाप.. आहाहा! परद्रव्य की प्रवृत्ति में तो अकेला पाप है। अब पाप में से निवृत्ति लेकर जिसे पुण्य भी नहीं होता, उसे तो यह बात रुचती नहीं। यहाँ तो पुण्य में से भी निकलकर आत्मा के आश्रय से शुद्धि का, आनन्द का वेदन हुआ, अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन हुआ, अतीन्द्रिय आनन्द मोक्षमार्ग का अर्थ? अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन, उसका नाम मोक्षमार्ग.. है! आहाहा!

क्योंकि भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है। आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द से लबालब भरा है। आहाहा! उस अतीन्द्रिय आनन्द का आश्रय करके, जो सम्यग्दर्शन-

ज्ञान-चारित्र में अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आया, उसे भी यहाँ तो परद्रव्य कहा है। आहाहा! पूर्ण नहीं और एक समय की पर्याय है। केवलज्ञान भी एक समय की पर्याय है। केवलज्ञान वह सादि-अनन्त की पर्याय नहीं। रहती है सादि-अनन्त परन्तु एक समय की पर्याय है, दूसरे समय दूसरा केवलज्ञान, तीसरे समय तीसरा केवलज्ञान। आहाहा! केवलज्ञान पर्याय है, गुण नहीं। आहाहा!

वहाँ गये थे न, क्या कहलाता है? यात्रा का स्थल। मथुरा, मथुरा में सब पण्डित बैठे थे और यह व्याख्या हुई कि केवलज्ञान भी पर्याय है, गुण नहीं। वहाँ तो खलबलाहट हो गयी। यह क्या कहते हैं? भगवान का केवलज्ञान एक समय में तीन काल-तीन लोक को देखता है, वह पर्याय? पर्याय है। प्रगट हुई है, वह पर्याय है। ध्रुव-ध्रुव, वह प्रगट नहीं होता और ध्रुव आवरण में नहीं आता। त्रिकाली भगवान ध्रुव प्रगट नहीं होता और उसमें आवरण नहीं है। सकल निरावरण परमात्मा त्रिकाली आत्मा है। आहाहा! ए.. डाह्याभाई! ऐसी बातें हैं।

आता है न ३२० गाथा में? पीछे से लेंगे कदाचित्। ३२० कहीं है, वहाँ पीछे आया है। जो सकल निरावरण। द्रव्यस्वभाव है, वह तो सकल निरावरण है। अखण्ड एक प्रत्यक्ष प्रतिभासमय-प्रत्यक्ष होनेवाला, अविनश्वर शुद्ध पारिणामिक परमभावलक्षण निज परमात्म तत्त्व द्रव्य-निज परमात्मद्रव्य, वही उपादेय है। आहाहा! धर्मी निज परमात्मद्रव्य का ध्यान करता है। खण्ड-खण्ड ज्ञान का ध्यान नहीं करता। भाई! इसमें आता है, उसमें है।

जो सकल निरावरण अखण्ड एक प्रतयक्ष प्रतिभासमय है। पर्याय उसका ध्यान करती है। पर्याय उसे मानती है। पर्याय ऐसा नहीं मानती कि मैं पर्याय हूँ। पर्याय ऐसा मानती है कि सकल निरावरण अखण्ड एक प्रत्यक्ष प्रतिभासमय, अविनश्वर शुद्ध पारिणामिक परमभावलक्षण निजपरमात्मद्रव्य, वही मैं हूँ। निजपरमात्मद्रव्य, वही मैं हूँ। आहाहा! समझ में आया? पर्याय ऐसा जानती है कि जो सकल निरावरण अखण्ड एक प्रत्यक्ष प्रतिभासमय अविनश्वर शुद्ध पारिणामिक परमभावलक्षण निजपरमात्मद्रव्य, वही मैं हूँ। वह यह शुद्धभाव है। आहाहा! इसमें एक घण्टे में सब किस प्रकार याद रखना? भगवान! बापू! यह तो अलौकिक मार्ग है। ऐसी चीज़ अन्यत्र कहीं नहीं है। किसी सम्प्रदाय में नहीं। श्वेताम्बर में नहीं, तो फिर अन्यत्र तो कहाँ से होगी? आहाहा! सुनना कठिन पड़ता है।

केवलज्ञान परद्रव्य! कहते हैं – हाँ, क्योंकि एक समय रहता है और प्रभु तो त्रिकाल

है। वर्तमान.. वर्तमान.. वर्तमान.. वर्तमान.. त्रिकाल ध्रुव है। उस त्रिकाली को यहाँ शुद्धभाव कहा है। उस शुद्धभाव की अपेक्षा से वर्तमान पर्याय जो साथ में है, वह उपादेय नहीं है। वह संवर-निर्जरा और मोक्ष उपादेय नहीं है। आहाहा! क्योंकि उसके आश्रय से तो विकल्प उत्पन्न होता है। अन्तर के आश्रय से मोक्षमार्ग उत्पन्न हुआ, परन्तु मोक्षमार्ग की पर्याय का आश्रय करे तो राग उत्पन्न होता है। पर्याय के आश्रय से तो राग होता है। त्रिकाली भगवान एक समय में पूर्णानन्द का नाथ.. आहाहा! समझ में आया?

क्रमबद्ध में आया है न? जिस समय में मोक्ष होता है, उसी समय में होता है। एक बार हमारे प्रश्न हुआ था। यह तो रूपचन्दजी लक्ष्य में आये। रूपचन्दजी। वहाँ ध्यानविजय है न? कौन सा गाँव कहा? गजपंथा। गजपंथा हम गये थे। वहाँ श्वेताम्बर के ध्यानविजय थे न? उसने हमारी बात सुनकर श्वेताम्बरपना छोड़ दिया। ध्यानविजय थे। सोनी थे। कैसे? पराजिया सोनी। यहाँ का पढ़कर बहुत बात करते थे। फिर हम वहाँ गये तो हमें उठ-बैठ करके हमारे पैर लगे। मैंने कहा - क्या हुआ? यह बोलते हो तो क्या है? तो दोपहर को जाने का था, हम वहाँ गये। कमरा बन्द था। कमरा खोलकर हमारे दर्शन किये, फिर बैठे। मैंने पूछा, कहा प्रवचनसार में ऐसा आता है कि काल से मोक्ष और अकाल से मोक्ष, ऐसा पाठ आया है। इसमें तुम्हारा क्रमबद्ध कहाँ रहा? क्रमबद्ध - ऐसा तो नहीं पूछा था परन्तु काल से मोक्ष और अकाल से मोक्ष है तो काल से मोक्ष है, यह तो सैंतालीस नय इनकार करता है। रूपचन्दजी साथ में थे। चार-पाँच व्यक्ति थे। गजपंथा.. नासिक-नासिक।

वहाँ ऐसा पाठ कहा है कि जिस समय में मोक्ष होगा, वह कालनय और दूसरा अकालनय भी लिया है। तो यह काल से मोक्ष होता है, ऐसा नहीं, अकाल से भी मोक्ष होता है, यह पाठ में लिया है तो इसका अर्थ क्या? सैंतालीस नय प्रवचनसार। तो वह समझ गया कि मैं कहूँगा तो मेरी बात (सत्य) नहीं पड़ेगी। कहा - मैंने विचार नहीं किया। ऐसा कहकर छोड़ दिया। मैंने विचार नहीं किया।

यह काल से मोक्ष और अकाल से मोक्ष दोनों एक समय में हैं। अकाल का अर्थ कि स्वभाव, पुरुषार्थ, वह लेना है। काल तो वही समय है परन्तु उस समय में पुरुषार्थ और स्वभाव आदि है, उसे अकाल कहने में आता है। आहाहा! काल से भी मोक्ष और अकाल

से भी मोक्ष! परन्तु समय तो वही है। आहाहा! मात्र अकाल से कहने का आशय (इतना है कि) काल के अतिरिक्त स्वभाव, पुरुषार्थ, भवितव्यता, निमित्त का अभाव, ये पाँचों समवाय एक साथ हैं, उसे अकाल कहा गया है। आहाहा! पहली यात्रा निकली थी न? (संवत्) २०१३ के साल की बात है। बाईस वर्ष पहले। लोग विचार किये बिना ऐसे के ऐसे विपरीतता किये रहते हैं। कुछ पता ही नहीं होता है।

यहाँ कहते हैं.. आहाहा! काल से भी मोक्ष है, उस पर्याय को भी परद्रव्य कहने में आया है। एक भगवान आत्मा एक समय में (त्रिकाल है)। यह पर्याय है, वह एक समय की स्थिति है, और यह एक समय में त्रिकाल है, ध्रुव है। एक समय में वर्तमान ध्रुव है। आहाहा! वही उपादेय है। सम्यग्दृष्टि तो वही आदरणीय है।

मुमुक्षु : आश्रय करनेयोग्य...

पूज्य गुरुदेवश्री : आश्रय करनेयोग्य है। वही आदरणीय / उपादेय है। यहाँ उपादेय शब्द लिया है। आश्रय करनेयोग्य अर्थात् उपादेय करनेयोग्य। समझ में आया?

जीवादि सात तत्त्वों का समूह परद्रव्य होने के कारण... परद्रव्य होने के कारण। दलीलसहित, न्यायसहित (बात है)। **वास्तव में उपादेय नहीं है।** वास्तव में वे सात तत्त्व हैं... आहाहा! वे आश्रय करनेयोग्य नहीं हैं। वहाँ लक्ष्य करनेयोग्य नहीं हैं। ज्ञान होता है परन्तु आश्रय करने से लाभ होता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! है, उसका ज्ञान करना। ज्ञान में जानने में आते हैं परन्तु वे आश्रय करनेयोग्य उपादेय नहीं हैं। आहाहा! यदि तुम सात तत्त्व को उपादेय मानो तो भगवान त्रिकाल है, उसे हेय माना और अपने आत्मा को.. परमात्मप्रकाश में शब्द है। रागादि को उपादेय माना, उसे आत्मा हेय हो गया। यहाँ कहते हैं, जो सात तत्त्व को उपादेय माने, तो त्रिकाली द्रव्य तो लक्ष्य में रहा नहीं। द्रव्य का दृष्टि में से अभाव हो गया। आहाहा! ऐसी बात सुनने में कठिन पड़ती है। ऐसा मार्ग है प्रभु का। आहाहा! तीन लोक के नाथ तीर्थंकरदेव, जिनेश्वर परमात्मा का यह हुकम है। उनका यह मार्ग है। प्रभु! यह कोई पक्ष नहीं, यह कोई वाड़ा नहीं। आहाहा! वे उपादेय नहीं। आहाहा! तब उपादेय कौन है? वह कहते हैं।

सहज वैराग्यरूपी महल के शिखर का जो शिखामणि है,... स्वयं मुनि कहते हैं। मुनिपना कैसा है? **सहज वैराग्यरूपी महल के शिखर का जो शिखामणि है,...** वैराग्य

किसे कहते हैं ? दुकान, धन्धा, व्यापार छोड़ दिया, ब्रह्मचर्य ले लिया, इसलिए वैराग्य हो गया, ऐसा नहीं है। वैराग्य किसे कहते हैं ? कि अपनी पूर्ण वस्तु की प्रतीति के अस्तित्व की श्रद्धा और पुण्य-पाप के भाव से विरक्त होना, उसका नाम वैराग्य है। आहाहा! समझ में आया ? इस समयसार में पुण्य-पाप अधिकार में है। पुण्य-पाप के शुभाशुभभाव हैं, वे राग हैं। उनसे विरक्त होना, वह वैराग्य है परन्तु मात्र वैराग्य नहीं, अपने पूर्ण शुद्धतत्त्व की प्रतीति और पुण्य-पाप से हटकर वैराग्य, वह ज्ञान और वैराग्य दो शक्ति धर्मी के साथ में है। आहाहा! समझ में आया ?

धर्मी की ज्ञान और वैराग्य शक्ति एक समय में दोनों साथ में है। ज्ञान (अर्थात्) त्रिकाली उपादेय है, ऐसा ज्ञान। आहाहा! समझ में आया ? और पुण्य-पाप के विकल्प से विरक्त। रक्त है अनादि से जो रक्त है। वह विरुक्त (होवे), वह वैराग्य है। आहाहा! यह मुनि कहते हैं। आहाहा! भाषा तो सरल है परन्तु बापू! तत्त्व तो कोई अलौकिक है। ऐसा नहीं समझना कि हमें समझ में नहीं आयेगा। प्रभु! आत्मा तो एक क्षण में केवलज्ञान ले सके, इतनी ताकतवाला है। आहाहा! एक समय में केवलज्ञान लेने की ताकतवाला कहे कि मुझे समझ में नहीं आता, प्रभु! कलंक लगता है। समझ में नहीं आता, ऐसा नहीं कहना, प्रभु! आहाहा! मार्ग तो मार्ग है। आहाहा!

सहज वैराग्यरूपी... ऐसी भाषा ली है न? सहज वैराग्य का अर्थ कि सम्यग्दर्शनसहित, पुण्य-पाप से रहित, वह वैराग्य है। यह तो आचार्य के ऐसे शब्द हैं। ऐसे दिगम्बर सन्तों के (जैसे) शब्द कहीं नहीं हैं। अलौकिक बात है, बापू! यह समझने के लिये थोड़ा समय देना पड़ेगा। विद्यालय के पठन में तो सात, आठ, दस वर्ष निकालता है। पढ़ते-पढ़ते।

हमारा एक मित्र था, हम साथ पढ़ते थे। फिर हम तो हमारी दुकान में जाने लगे। फिर भावनगर रास्ते में मिले थे। कैसे ? वेणीभाई! क्या करते हो ? मैं पढ़ता हूँ। अरे! कहाँ तक ? कि इक्कीस वर्ष हुए पढ़ते-पढ़ते। आहाहा! मित्र थे। सूरत के एक डॉक्टर थे, उनका लड़का था, वह उनका मित्र था, हम तो दुकान में जाने लगे थे। फिर भी वह भावनगर पढ़ता था। मिले तो कहा कि अभी तक क्या करते हो ? कहा - मैं पढ़ता हूँ। उसके घर गये थे। कितने वर्ष से (पढ़ते हो) ? कितना बड़ा अभ्यास होगा कोई अपने को कहीं एल.एल.बी. या एस.एस.सी. हिम्मतभाई को क्या कहलाता है बी.ए.। इन्हें कुछ

पदवीं कहते थे। इक्कीस वर्ष। हमारे बाद भी पढ़ते-पढ़ते दस बारह वर्ष हो गये। तो इसके लिये थोड़ा समय लेना पड़ेगा न प्रभु! अनन्त काल से समझा नहीं। कल्पना से मान लिया कि हम कुछ समझे हैं। परन्तु तीन लोक के नाथ को, सर्वज्ञ परमात्मा को क्या रीति और क्या पद्धति कहनी है, वह समझना अलौकिक बात है, अलौकिक पुरुषार्थ है।

सहज वैराग्यरूपी महल के शिखर का जो शिखामणि है,... है? **शिखामणि= शिखर के ऊपर का रत्न; चूड़ामणि; कलगी का रत्न। परद्रव्य से जो पराङ्गमुख...** कौन? मुनि अपनी बात करते हैं। **परद्रव्य से जो पराङ्गमुख...** सात द्रव्य (तत्त्व) से पराङ्गमुख है। आहाहा! सात तत्त्व जो परद्रव्य है, उनसे पराङ्गमुख है। आहाहा! और **पाँच इन्द्रियों के विस्ताररहित...** पाँच इन्द्रियों के विस्ताररहित, एक देहमात्र रही। नग्न-मुनि है न? मुनिपना तो नग्न ही होता है। मात्र नग्न नहीं; अन्तर में नग्नपना - विकल्प से रहित, त्रिकाली द्रव्य के आनन्द का वेदन और फिर स्वरूप में रमणता होने पर उसे नग्नपना हो जाता है। वस्त्र रहे और मुनिपना हो, ऐसा नहीं है और वस्त्र छूट गये और नग्नपना हो गया तो मुनिपना है - ऐसा भी नहीं है। आहाहा! ऐसा मार्ग है। समझने में आता है न? बहुत दूर से आये हैं न? अपनी सुविधा छोड़कर यहाँ आये हैं न! आहाहा! यहाँ कहीं इतनी सुविधा भोजनशाला में नहीं होती, जितनी तुम्हारे घर में हो उतनी, तो भी (सुनने आये हैं)। आहाहा!

कहते हैं कि **पाँच इन्द्रियों के विस्ताररहित देहमात्र जिसे परिग्रह है, जो परम जिनयोगीश्वर हैं,...** आहाहा! यह मुनि की बात की है। **परम जिनयोगीश्वर हैं,...** योगीश्वर तो अन्यमत में भी कहते हैं। परन्तु वह योगी नहीं; अन्तर में पूर्णानन्द के नाथ में जुड़ान हो गया हो, उसे योगी कहते हैं। अन्यमति ऐसा ध्यान करे, कल्पना करे, वह सब अज्ञान है, वह तो मूढ़ता है, वह योग नहीं। आहाहा! आगे योग की व्याख्या है कि योग किसे कहते हैं? नियमसार में (व्याख्या है)। अन्तर में स्वरूप की रमणता पूर्ण, पूर्णानन्द के नाथ में आनन्द का भोजन, अतीन्द्रिय आनन्द का उग्र भोजन करना, उसे योग कहने में आता है। उसने अपनी पर्याय को द्रव्य में जोड़ दिया है। अपनी पर्याय को द्रव्य में जोड़ दिया, उसे योग कहते हैं। आहाहा!

जो परम जिनयोगीश्वर हैं, स्वद्रव्य में जिसकी तीक्ष्ण बुद्धि है... अब इसकी व्याख्या कहेंगे... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)